भारत की अमर विभूतियाँ

रमेशचन्द्र गुप्त
साहित्यरत्न प्रभाकर

भारत की अमर विभूतियाँ

लेखक—
आर० सी० गुप्ता
साहित्यरत्न, 'प्रभाकर'

प्रकाशक—
पुस्तक भण्डार
मथुरा।

प्रथमावृत्ति] [मूल्य चार आना।

विषय-सूची

महात्मा मोहनदास-कर्मचन्द गांधी

निष्कलं, सक्रियं शांतं, निरवद्यं, निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥

"कला-रहित, सक्रिय, शान्त, निन्दा के परे और दोष-रहित, अमरत्व का सर्वश्रेष्ठ-सेतु—(वह है) ईंधन रहित वाला ज्योति।"

३० जनवरी सन् १९४८ की वह भयानक शाम, भारत की आत्मा, विश्व की विभूति का वह अचानक अवसान, कौन कभी भुला सकता है ? भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों पर जो विशाल धब्बा इस रोज लगा उसे समय चक्र भी मिटाने में सर्वथा असमर्थ ही रहेगा। देश ने अपने सर्वोत्तम अवलम्ब अपने महान् तपस्वी राष्ट्रपिता को ऐसी निर्ममता से खो दिया। राष्ट्रपिता के जीवन काल में हमने उनकी बातों को नहीं माना। उनको, उनके उपदेशों को नहीं जाना; फलस्वरूप आज हमारी यह दुर्दशा है। वह महान् विभूति तो गई, परन्तु उसकी जीवन झाँकी और उसके उपदेश आज भी हमें उपलब्ध हैं। अब भी इन्हें अध्ययन कर हम बहुत कुछ उनसे सीख सकते हैं। आइये, पूज्य 'बापू' को जानने की चेष्टा करें:—

बचपन और शिक्षा—गाँधीजी के पिता, कर्मचन्द, अथवा कबा गाँधी राजकोट राज्य में प्रधान मन्त्री थे। अपनी साधुता, सच्चे व्यवहार के लिये इनकी बड़ी ख्याति थी। इनकी माता भी बड़ी साध्वी स्त्री थीं। ऐसे माता-पिता के यहाँ आश्विन बदी १२ सम्वत् १९२५ (अर्थात् २ अक्टूबर सन् १८६९) को

पोरबन्दर में मोहनदास गाँधी का जन्म हुआ। जब ये, ७ वर्ष के थे इनके पिता पोरबन्दरसे राजकोट आगये। वहीं इन्होंने स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। १८८७ में मैट्रिक पास किया। पढ़ाई में मोहनदास अच्छे थे। छात्र वृत्तियाँ भी पाते रहे। कुसङ्ग के कारण इन्हें थोड़े समय के लिये मांस खाने, चोरी करने तथा सिगरेट पीने की आदत पड़ गई थी। परन्तु इन कुप्रवृत्तियों को निभाने के लिये इन्हें झूँठ बोलना पड़ता था, जिससे आरम्भ से ही इन्हें बड़ी अरुचि थी। माता-पिता के प्रति इनमें बड़ी भक्ति थी। अतएव एक दिन पिता के सामने अपनी गलतियों को स्वयं ही लिखकर क्षमा माँगी और अपने हृदय की बेचैनी को दूर किया। बाल्यकाल में श्रवणकुमार तथा सत्य हरिश्चन्द्र की कथाओं का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा जो जीवन पर्यन्त बना रहा।

उस समय बाल-विवाह का अधिक प्रचार था। मैट्रिक पास करने के पहिले ही इनका विवाह हो चुका था। मैट्रिक के बाद बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इङ्गलेंड जाने की तय हुई। माँ ने मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहने की कड़ी प्रतिज्ञा लेकर इन्हें विलायत जाने की आज्ञा दी। ४ सितम्बर १८८८ को ये बम्बई से इङ्गलेंड रवाना हुये।

विलायत में—मांस न खाने के कारण इङ्गलेंड में इन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। परन्तु माताके सामने की हुई प्रतिज्ञाको अक्षरशः निभाया। आरम्भ में फैशन का शौक लगा, परन्तु बहुत जल्दी ही उन्हें यह बात समझ में आगई कि आत्मिक आनन्द सादगी में है। विद्यार्थी की प्रतिष्ठा बाहरी दिखावट में नहीं, वरन् उसके सदाचार में है और उसके धन का उपयोग विद्याधन के संग्रह में।

१० जून १८९१ को बैरिस्टरी पास कर भारत लौटे। बम्बई में बड़े भाई से माता के स्वर्गवास का समाचार पाकर बड़ा ही दुःख हुआ।

बैरिस्टर—पहिले बम्बई में, फिर राजकोट में वकालत आरम्भ की। ३००) रु० माह की आय हुई। अप्रैल १८९३ में, दक्षिण अफ्रीका से दादा अबदुल्ला एण्ड कम्पनी का निमन्त्रण पाकर वहाँ के लिये रवाना हुये।

दक्षिण अफ्रीका में—डरबन पहुँचने पर, अबदुल्ला सेठ उन्हें वहाँ की अदालत दिखाने लेगये। अदालत में मजिस्ट्रेट ने उनकी ओर देखा, और कहा 'पगड़ी उतार लो।' गाँधीजी ने इन्कार कर दिया और बाहर चले आये। भारतीय होने का यह पहिला कटु अनुभव था।

आठवें दिन सेठ अबदुल्ला के मुकदमे की पैरवी करने के लिये प्रिटोरिया को रवाना हुये। पहिले दर्जे का टिकट लिया। रास्ते में भारतवासी, 'कुली' होने के कारण उन्हें धक्का देकर पहिले दर्जे के डिब्बे से नीचे गिरा दिया गया। इन अपमानों के बीच में ही नेटाल धारा सभा में एक बिल गोरे लोगों ने भारतियों के मताधिकार छीनने के उद्देश से पेश करना चाहा।

गांधीजी ने भारत-वासियों के प्रति इस अपमानकारी व्यवहार का डटकर सामना करने का निश्चय किया। भारतियों को सङ्गठित किया और मई १८९४ में नेटाल इण्डियन काँग्रेस की नींव डाली। १८९६ में गाँधीजी परिवार को लेने के लिये छः माह के लिये भारत आये। जब लौटकर डरबन बन्दरगाह पर उतरे, तो गोरों के एक बड़े भारी समूह ने बन्दरगाह से घर जाते हुये रास्ते में इन्हें घेर लिया और अनेक प्रकार से

मारा पीटा। एक चतुर पुलिस अफसर की मदद से ही इनकी जान बची। भारत-वासियों की दशा सुधारने का आन्दोलन चलता रहा।

१८९७ से ९९ तक बोअर युद्ध में गाँधीजी ने ११०० व्यक्तियों की एक टुकड़ी लेकर घायलों की सेवा शुश्रूषा करने का प्रशंसनीय कार्य किया। सन् १८९९ में वे भारत लौटे और बम्बई में स्थायी रूप से रहकर वकालत करने की तैयारी की। परन्तु दक्षिण-अफ्रीका से आवश्यक बुलावा पाकर उन्हें फिर वहीं जाना पड़ा और स्थायी रूप से बसना पड़ा। १९०४ में उन्होंने वहाँ इण्डियन ओपिनियन नाम का साप्ताहिक-पत्र निकाला और डरबन से १२ मील दूर फिनिक्स में उन्होंने एक आश्रम की नींव डाली। दक्षिण अफ्रीका के सार्वजनिक जीवन में गांधीजी को गीता तथा रास्किन की पुस्तक 'अन्टू दी लास्ट' से बड़ी सहायता मिली। गीता के शब्द 'अपरिग्रह' और 'समभाव' ने उनके मन को जीत लिया। और दूसरी पुस्तक में उन्हें 'सर्वोदय' के ये सिद्धान्त मिले।

(१) सबके भले में अपना भला है। (२) वकील और नाई के काम का मूल्य एक-सा होना चाहिये, दोनों को आजीविका का अधिकार एक समान है। (३) मजदूर और किसान का, अर्थात् परिश्रम का, जीवन ही सच्चा जीवन है।

सन् १९०६ में अफ्रीका में भारतीय रजिस्ट्रेशन-कानून के विरोध में उन्हें आन्दोलन करना पड़ा। और इसी आंदोलन से 'सत्याग्रह' का जन्म हुआ। अनेकों भारतीय गांधीजी के साथ जेल गये और अन्त में आठ वर्ष की लम्बी अहिंसात्मक लड़ाई के बाद उनकी विजय हुई। १९१४ में महायुद्ध छिड़ने पर गाँधीजी भारत लौट आये।

भारत स्वतन्त्रता संग्राम—भारत लौटकर गांधीजी ने अहमदाबाद में २५ मई १९१५ को साबरमती आश्रम की स्थापना की। १९१९ रौलट एक्ट के आने पर उन्हें सत्याग्रह का अस्त्र भारत में भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रयोग में लाना पड़ा। १९२० में असहयोग आन्दोलनका सूत्रपात हुआ। सन् १९१९-२१ में उन्होंने खिलाफत आन्दोलन में भी प्रमुख रूप से भाग लिया। मार्च १९२२ में गांधीजी छः वर्ष के लिये जेल भेजे गये। १९२४ के आरम्भ में सत्याग्रह स्थगित हुआ। सत्याग्रही छोड़ दिये गये। १९२४ में गाँधीजी कांग्रेस केअध्यक्ष बनाये गये। १९३० में भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का अहिंसात्मक आन्दोलन फिर उनकी सुरक्षता में आरम्भ हुआ।

५ मई, १९३० को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। परन्तु २६ जनवरी १९३१को उन्हें रिहा कर दिया गया। ६मार्च १९३१ को लार्ड इरविन के साथ समझौता हुआ। जिसके फलस्वरूप सारे सत्याग्रही छोड़ दिये गये और गाँधीजी ने काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज कांफ्रेंस में लन्दन जाकर भाग लिया। गोलमेज कांफ्रेन्स में कोई सर्वमान्य निर्णय न होने पर जनवरी १९३२ में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इसी वर्ष अगस्त मास में ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री के रामजे मैकडानल्ड साम्प्रदायिक निर्णय पर दुःखित होकर गांधीजी ने जेल में २० सितम्बर को आमरण अनशन आरम्भ किया। फलस्वरूप पूना समझौते के रूप में बदल दिया गया। मई १९३३ में देश में अस्थायी शान्ति होने पर गांधीजी छोड़ दिये गये। सन् १९३९ में उन्होंने राजकोट के ठाकुर साहिब के, राज्य में सुधार संबंधी वचन भङ्ग करने के कारण, फिर आमरण अनशन आरम्भ किया। परन्तु वायसराय के हस्तक्षेप से वह शीघ्र ही टूट गया।

१६४० से भारतीय स्वतन्त्रता की लहर फिर आरम्भ हुई। और गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इस लहर की पराकाष्ठा अगस्त १६४२ के आन्दोलन में हुई, जिसके अन्तिम फलस्वरूप १५ अगस्त सन् १६४७ को भारत को परतन्त्रता से मुक्ति मिली।

गांधीजी की प्रधान पुस्तकें—मङ्गल प्रभात, हिन्द-स्वराज, सर्वोदय, आत्मकथा, अनीति की राह पर। रचनात्मक कार्यक्रम।

उनके स्थापित समाचार पत्र—इन्डियन ओपीनियन (द० अ०) यङ्ग इन्डिया, नवजीवन, हरिजन (हिन्दी, गुजराती, अँग्रेजी)

उद्देश्य और शिक्षा—यद्यपि अधिकतर जनों को, गांधीजी की राजनैतिक सफलताओं के कारण, वे संसार के महान् राजनैतिक उद्धारक के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में उनकी नैतिक देन जगत-व्यापी और इससे कहीं बढ़ चढ़कर थी। उन्होंने सर्वदा के लिये परतन्त्रता के बन्धन में जकड़े मानव को अनुपम, अटल और सरल उपायों द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाया। उन्होंने नारी समाज को स्वतन्त्रता दिलायी, अस्पृश्यता को दूर किया। आर्य संस्कृति का पुनरुत्थान कर, गीता के सन्देश को पुनर्जीवित किया, परतन्त्रता-जन्य हीनतम भावनाओं के स्थान पर आत्म-विश्वासी रचनात्मक कार्यक्रम दिया और दिया समाज, राष्ट्र और विश्व-शांति का स्थायी आधार, सत्य अहिंसा से ओत-प्रोत मानवी जीवन। गांधी एक साथ सम्राट, देवता और योगी थे। जीवन के प्रत्येक क्षण का सर्वोत्तम उपयोग उनकी आदत थी। आत्म-दर्शन उनका एकमात्र ध्येय।

उनके जीवन सिद्धान्त—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता-निवारण कार्य के निवारण परिश्रम, सर्वधर्म समभाव, नम्रता सहिष्णुता और स्वदेशी।

रचनात्मक कार्यक्रम—इसे गाँधीजी ने सदैव अपनी चेष्टाओं में प्रथम स्थान दिया। सत्याग्रह का इसे आधार माना। सन् १९३५ में इसी के खातिर कांग्रेस की सदस्यता छोड़ी। इसके अन्तर्गत ये प्रमुख बातें थीं।

(१) हिन्दू मुस्लिम एकता (२) अस्पृश्यता-निवारण (३) मद्य-निषेध (४) खादी (५) ग्रामोद्योग (६) बुनियादी तालीम (७) राष्ट्र-भाषा प्रचार (८) आर्थिक समानता (९) नारी समाज सेवा, (१०) गाँवों की सफाई (११) प्रौढ़-शिक्षा (१२) प्रांतीय भाषा प्रचार (१३) किसान-मजदूर सेवा (१४) आदि वासियों की सेवा।

विद्यार्थियों को उपदेश—नवयुवक और विद्यार्थियों से गाँधीजी का सदैव निकट सम्पर्क रहा। उनके प्रति उनकी ये प्रधान शिक्षायें थीं। (१) कम बोलो (२) प्रत्येक क्षण का हिसाब रखो (३) प्रत्येक पैसे का हिसाब रखो (४) गरीबों की भाँति रहो (५) अध्ययन में परिश्रमशील बनो (६) व्यायाम में नियमित रहो (७) मिताहारी बनो (८) डायरी नित्य लिखो (९) आत्मिक उन्नति को प्रथम स्थान दो (१०) सुबह शाम नियमित रूप से प्रार्थना करो एवं धर्म पुस्तक का पाठ करो। और इन सबसे अधिक:—

'गुण के बदले दस गुना गुण करना यह धर्म है।
अवगुण बदले गुण करे सत्यधर्म का मर्म है॥'

———

(१) 'गुरुदेव'—रवीन्द्रनाथ-टैगोर

—:-()-:—

जयन्ति ते सुकृतिनो रस सिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरा—मरणजं भयम्॥

उन सत्कर्मी रस सिद्ध कवीश्वरों की जय हो, जिनके यश रूपी शरीर को चौथेपन या मृत्यु का भय नहीं है। —भर्तृहरि

पूज्य 'बापू' की जीवन—झाँकी करके 'गुरुदेव' की ओर बढ़ते हुये, फ्रान्स के उस विश्व—विख्यात दार्शनिक रोम्या रोलां के वाक्य याद आते हैं:—

"गांधी और रवीन्द्र हिमालय से निकलकर पूर्व और पश्चिम में बहिने वाली गङ्गा और सिंधु सदृश दो धाराएँ हैं, आर्य संस्कृति को संसार को दो महान देन। एक में उसके हृदय की सुकुमारता और दूसरे में उसकी आत्मा की तेजस्विता चमक रही है।"

गुरुदेव' भारत को उन महानतम् आत्मा में से एक थे जिनका प्रकाश देश की सीमाओं को पारकर संसार के कौने-कोने में फैल चुका था। साधारण रूप से हमने उन्हें 'विश्व-कवि' करके सुना और जाना, परन्तु, वास्तव में वे इससे कहीं अधिक थे। भारत के लिये तो एक प्रतिभाशाली समाज सुधारक एवं देशभक्त और विश्व के लिये एशियाई गौरव को पुनर्जीवित करने वाले, आर्य संस्कृति के उस विजयी नित्य-भावनाओं के दिग्दर्शनकारी श्रेष्ठतम लेखक, कवि, और कला-कार वे थे। सदियों पुरानी भारतीय परतन्त्रता ने जिस पूर्वी गौरव को पाश्चात्य देशों की भौतिक उन्नति के सन्मुख मलीन

कर दिया था, रवीन्द्र की रचनाओं ने उसे फिर से उज्ज्वल कर सहृदयता के Perspective एक ऐसे दृष्टिकोण से संसार के सन्मुख उपस्थित किया कि देश विदेश सभी के मस्तक अनायास आदर से झुक गये। सभी ने उनकी कविताओं में भौतिक सभ्यता से बढ़कर अनन्त को ईङ्गित करने वाली भावनाओं को अनुभव किया और समझा आत्म-दर्शन का महत्व। अस्तु, ऐसे 'गुरुदेव' का जीवन क्रम हम अध्ययन करेंगे।

वंश परिचय और जन्म—रवीन्द्रनाथ ने कलकत्ता, जोड़ा साँकू मुहल्ले के उस प्रसिद्ध 'ठाकुर' घराने में जन्म लिया था जो पीढ़ियों से अपने स्वदेश प्रेम, साहित्य-प्रचार, चित्रकारी और कला के लिये बंगालमें यथेष्ठ ख्याति लाभ कर चुका था। बंगाल के सभी समृद्धशाली परिवार 'ठाकुर' परिवार को आदर्श मानते थे। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की ही इस परिवार पर असीम कृपा दिखाई देती थी। रवीन्द्रनाथ के पितामह द्वारिका-नाथ ठाकुर ने करोड़ों की सम्पत्ति उपार्जन की थी। जैसे वे धनी थे वैसे ही देश प्रेमी और दानी भी। रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर तो 'महर्षि' करके प्रसिद्ध ही थी। उच्च-कोटि के विद्वान् साथ-साथ, उदारता और सहृदयता और त्याग के वे उदाहरण थे।

उनकी जीवन कहानी तो स्वयं अलग से अध्ययन करने योग्य है। वैसे उच्च परिवार में ७ मई १८६१ को रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ।

शिक्षा—आरम्भ में कुछ समय तक एक चटसाल में पढ़कर स्कूल में प्रविष्ट हुये। कुछ समय वाद अपने बड़े भाई सोमेन्द्रनाथ के साथ घर पर ही एक अध्यापक से गणित,

इतिहास, भूगोल, बंगला, संस्कृत तथा अँग्रेजी का अध्ययन किया। साथ ही साथ 'सङ्गीत का भी अभ्यास आरम्भ हुआ। आठ वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने मनोहारी तुकबंदियाँ आरंभ करदी थीं।

११ वर्ष की आयु में पिता के साथ में शान्ति-निकेतन गये। यह स्थान महर्षि देवेन्द्रनाथ ने १८६३ में बोलपुर में २० बीघा जमीन खरीद कर बनाया था। १२ वर्ष की अवस्था में पिता के साथ उत्तरी भारत का भ्रमण किया। इस भ्रमण काल में महर्षि देवेन्द्रनाथ ने इन्हें संस्कृत, अँग्रेजी और ज्योतिष की शिक्षा दी। १८७४ में कलकत्ता लौटने पर स्कूल में दाखिल हुये। यहाँ पर सर्व प्रथम तत्व बोधिनी पत्रिका में 'अभिलाषा' शीर्षक इनकी रचना प्रकाशित हुई। जब ये १४ वर्ष के थे, इनकी मां का स्वर्गवास होगया। इनकी पहिली सुविख्यात रचना १८७५ ई० में अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुई।

विलायत में—सितम्बर २०, १८७८, को अपने भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ इङ्गलैंड गये। जहाँ पर लन्दन यूनीवर्सिटी में इन्होंने अँग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। साहित्य के अतिरिक्त गायन तथा ब्रिटिश म्यूजियम के प्रति भी इनकी विशेष अभिरुचि रही। इङ्गलैंड से बराबर अपनी रचनायें ये भारत भेजते रहे।

वापिस भारत में—१८८० में भारत लौटकर इन्होंने दो नाटक 'बाल्मीकि प्रतिभा' तथा 'काल्मृज्य' लिखे, जिनको जोरा सांकू में बंकिमचन्द्र चटर्जी के सन्मुख खेला गया। १८८१ में, वकालत पढ़ने के इरादे से इङ्गलैंड को रवाना हुये परन्तु इरादा बदल कर मद्रास से मंसूरी अपने पिता के पास लौट गये।

१८८२ ई० में 'सांध्य-सङ्गीत' की रचना की और १६०० ई० में बंकिमचन्द्र चटर्जी की मासिक पत्रिका 'बंगदर्शन' को पुनर्जीवित किया।

शांति-निकेतन से—सितम्बर १६०१ में, परिवार को कलकत्ते में छोड़कर, शान्ति-निकेतन में 'बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम" की स्थापना की। प्राचीन गुरुओं की भांति वे शिष्यों को पढ़ाते, कहानी सुनाते और उनके विनोद में भाग लेकर चरित्र-निर्माण में सहायक होते। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण इस आश्रम के लिये उन्हें अपना एक मकान, पुस्तकालय और स्त्री के सब गहने बेचने पड़े थे। यहीं से रवीन्द्र-नाथ 'बंगदर्शन' का सम्पादन भी करते थे। यहीं से उन्होंने बोअर युद्ध में ब्रिटिश नीति, लार्ड कर्जन के पूर्व देशों के प्रति निन्दात्मक भाषणों तथा वङ्ग-भङ्ग नीति का बड़ा प्रभावशाली विरोध किया और एशिया के प्राचीन गौरवको पुनरुत्थान करने करने वाले कई लेख लिखे। १६०२ में इनकी परम साध्वी स्त्री तथा १६०५ में महर्षि पिता का स्वर्गवास होगया। १६०६ में ये प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन के सभापति बनाये गये। परन्तु १६०७ में स्वदेशी आंदोलन की प्रगति से असुन्तुष्ट होकर, शांतिमये लेखन का मार्ग अपनाया।

शान्ति प्रेमी लेखक और कवि—१६०७ से रवीन्द्रनाथ प्रतिभाशाली लेखक के रूप में प्रकट होते हैं। इसी के बाद 'बागी अरविंद' के लिये' अरविन्द अभिनन्दन,' 'गोरा,' 'सोरा-दोत्सव' 'राजा', 'जीवन-स्मृतियां' इत्यादि रचनायें हुई। तथा अपनी कविताओं का 'गीतांजलि' नामक वह विश्व-विख्यात संग्रह बंगला और अँग्रेजी में प्रकाशित किया जिस पर नवम्बर

१६१३ में नोबिल पुरस्कार मिला। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस पुरस्कार को पाने वाले पहिले एशिया-वासी थे। दिसम्बर १६११ में इन्होंने ही कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के लिये 'जन-गन-मन अधिनायक'—राष्ट्रीय समाज की रचना की थी।

विदेश यात्रायें—१६१२ में पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने इंगलेंड गये, जहाँ एक सभा में देश के सर्वोच्च विद्वानों और कलाकारों ने आपका अपूर्व स्वागत किया। इसी समय दीन-बन्धु ऐंड्रूज से उनका परिचय हुआ। इङ्गलेंड से अमेरिका होकर 'ठाकुर' भारत लौटे। १६१६ में वे एंड्रूज के साथ जापान गये, जहाँ उनका सार्वजनिक स्वागत हुआ। उन्होंने चीन पर अत्याचार करने के लिये जापान क उसी देश में तीव्र आलोचना की। जापान से अमेरिका गये। वहाँ बहुत से भाषण दिये। इनके नाटक भी वहाँ खेले गये। अमेरिका में गोरे-काले के भेद-भाव की इन्होंने कड़ी आलोचना की। १६१७ में भारत लौटे। १६२० में कवीन्द्र ने फिर यूरोप यात्रा की। सभी प्रमुख देशों में वे गये। तथा सभी जगह सर्वोच्च विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। १६२४ में चीन गये और १६३० में रूस। अनेकों देशों ने इनके ग्रन्थों का अपनी भाषाओं में अनुवाद कराया और लाखों की सख्या में उनकी बिक्री हुई। इस प्रकार १२ वार 'ठाकुर' पश्चिमी देशों की यात्रा करने गये। प्रत्येक यात्रा में इन्होंने अपनी प्रभावशाली वक्तृताओं, रचनाओं और कला प्रदर्शन द्वारा दूसरे देशों के सन्मुख भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित किया, और ईश्वर की ओर मनुष्यों का ध्यान आकर्षित किया। इसके साथ ही साथ तत्कालीन राजनैतिक हलचलों में भी अपने देश में और बाहर बराबर अन्याय की निर्भीक आलोचना

करते हुये वे भाग लेते रहे। सन् १९१९ में रौलट एक्ट विरोधी आंदोलन में गाँधीजी को बड़ी सहायता प्रदान की। पञ्जाब के हत्याकांड के बाद तो अपनी 'सर' की उपाधि को तिलांजलि देते हुये जो पत्र वायसराय को उन्होंने लिखा था वह ऐतिहासिक वस्तु होगई है। और इसी प्रकार हैं इनके Nationalism' शीर्षक जापान में दिये गये भाषण तथा जापानी राष्ट्रकवि ने गूची को लिखे गये चीन आक्रमण विरोधी पत्र। और तो क्या गांधीजी स्वयं अपने कार्यों में विश्व-भारती गुरुदेव ने नैतिक समर्थन की प्रतीक्षा में रहते थे।

सन् १९०१ में बोलपुर में जिस शिक्षा संस्था की नींव 'गुरुदेव' ने डाली थी। सन् १९२१ में उसे विश्व-भारती रूप में परिवर्तित कर दिया और अपनी सम्पूर्ण जायदाद, पुस्तकें, पुस्तकों की आय तथा नोबुल पुरस्कार उसी को अर्पित कर दिये। अपना सारा समय तो उसे पहिले ही से दे रखा था। विश्व-भारती को कवीन्द्र संसार भर की संस्कृतियों, साहित्य और कला के मिलाप-स्थल के रूप में देखना चाहते थे। इस उद्देश्य से भिन्न-भिन्न देशों के अध्यापक तथा विद्यार्थियों के लिये उन्होंने वहाँ व्यवस्था की थी। 'गुरुदेव' को अपने उद्देश्य में यथेष्ठ सफलता भी मिली थी। विश्व-भारती आज वास्तव में एक विश्व-विख्यात संस्था है, जहाँ देश-विदेश से बड़े-बड़े विद्वान् और महापुरुष जाते रहते हैं। दीन-बन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज ने आमरण अपना सारा समय विश्व-भारती को दिया। चीन के प्रसिद्ध विद्वान् ग० सनयातसेन यहीं चीना-भवन के अध्यक्ष हैं। गुरुदेव की मृत्यु के बाद स्वयं गांधीजी ने संस्था की व्यवस्था में बहुत हाथ बटाया था। विश्व-भारती की एक ग्राम सुधार सम्बन्धी शाखा है जो 'श्रीनिकेतन' कह

जाती है। यह संस्था एल० के० एल्महर्स्ट नामक अँग्रेज़ के ५०) हजार रुपया वार्षिक दान से स्थापित हुई है और ग्राम सुधार का अनुकरणीय कार्य कर रही है।

गुरुदेव की रचनाऐं—बंगला में लगभग ३५ राजनैतिक रचनाऐं, नाटक लगभग ३८, कहानी और उपन्यासें पुस्तक १६, साहित्य, कला, धर्म पर ५० से अधिक निबन्ध संग्रह पुस्तक, ३००० से ऊपर कविताऐं। अँग्रेजी में, गीतांजलि तथा अन्य-अन्य पुस्तकें। ६८ की वर्ष की आयु में गुरुदेव ने चित्र-कारी को अपनाया—आपके चित्र मास्को, बर्लिन, पेरिस, बर्मिंघम, न्यूयार्क में प्रदर्शित किये गये। आक्सफोर्ड यूनी-वर्सिटी ने डाक्टरेट की उपाधि देने के लिये शान्ति-निकेतन में एक विशेष दीक्षान्त संसार का आयोजन किया।

गुरुदेव का प्रस्थान—ऐसे कर्मठ और यशस्वी 'गुरुदेव' ने ८० वर्ष की आयु में ७ अगस्त १९४१ को अपने पैतृक घर कलकत्ते में शरीर त्यागा। उनके निधन से बसुन्धरा मानो रो उठी। किसी ने कहा, भारतीय अभ्युदय का सर्वोच्च सितारा चल बसा, चल बसा मानवता का वह प्रहरी जिसने क्षुद्रता में सोते मानव को आत्म-दर्शन की लौ लगाई और अनन्त सौंदर्य का पथिक-बनाया।

सर सैयद अहमदखाँ

वंश और जन्म—

सर सैयद अहमदखां उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े मुसलमानों में में से एक थे। उनका जन्म १७ अक्टूबर १८१७ को देहली में एक बड़े घराने में हुआ था उनके बाबा आलमगीर

द्वितीय के यहाँ ऊँचे पद पर थे और नाना अकबर द्वितीय के प्रधान मन्त्री थे। परन्तु इनके पिता सैयद मुहम्मद टकी में संसार के प्रति इतना वैराग्य था कि बड़े-बड़े ओहदे भी उन्होंने स्वीकार नहीं किये।

शिक्षा—सैयद अहमद बचपन से ही बड़े सत्यवादी थे। इन्होंने घर पर ही माता की Admirer सहायता से पूर्वी कला, साहित्य तथा भाषाओं का अध्ययन किया। अँग्रेजी भाषा के प्रशंसक होते हुए भी इन्होंने उसे नहीं सीखा।

बीस वर्ष की आयु में देहली में सरिश्तेदार बनाये गये, और १८४१ में फतहपुर सीकरी में सबजज बनाये गये। १८४६ में वे फिर देहली भेज दिये गये। सन् १८४७ में उन्होंने 'देहली के भग्नावशेषों का इतिहास' लिखा, जिसका फ्रांसीसी भाषा मे अनुवाद हुआ। इसी पुस्तक के प्रकाशन से १८६४ में सैयद अहमद एशियाटिक रायल सोसाइटी के सदस्य बनाये गये थे। सन् १८५० में सैयद अहमद रोहतक और पाँच वर्ष बाद वहाँ से बिजनौर भेजे गये।

ग़दर के समय बिजनौर स्थित अँग्रेजों की प्राण रक्षा करने तथा सरकार की सहायता करने के एवज़ में सैयद अहमद को तथा उनके बड़े पुत्र को आजीवन दो सौ मासिक की पेंशन तथा अन्य बहुत से पुरस्कार मिले। १८५८ में इन्होंने 'भारतीय ग़दर के कारण' पुस्तक लिखी। जिसमें सरकार और प्रजा के बीच सद्भावना पर जोर दिया।

जीवन-ध्येय और उसकी पूर्ति—

१८५८ में ये बिजनौर से मुरादाबाद भेजे गये। यहाँ इन्हें अपने जीवन लक्ष्य Backward पर विचार करने का

ये सोचा करते थे कि 'मुसलमान लोग पाश्चात्य शिक्षा से लाभ न उठाने के कारण पिछड़े हुये हैं। वे आधुनिक साहित्यक और वैज्ञानिक उन्नति से एकदम अपरिचित हैं।' उन्होंने मुरादाबाद में 'आधुनिक इतिहास अध्ययन' के निमित्त, एक स्कूल खोला और पाठ्य पुस्तकों की कठिनाई दूर करने के यिये १८६४ में एक 'अनुवादक समिति' बनाई। यही सोसायटी बाद में अलीगढ़ ले जायी गई। इसके लिये सैयद अहमद ने काफ़ी धन इकट्ठा किया, सुन्दर इमारत तथा पुस्तकालय बनवाया जिससे कि अलीगढ़ बाद में मुस्लिम शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र बन गया।

इंगलैंड यात्रा—१८६९ में सैयद अहमद वहाँ की शिक्षा पद्धति का अध्ययन करने तथा अपने दो पुत्रों की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करने इङ्गलेंड गये वे अपने देशवासियों विशेषकर मुसलमानों के लिये अपने प्रान्त में एक कालिज स्थापित करना चाहते थे। इङ्गलेंड में लार्ड लारैंस, लार्ड स्टैनली, कालीइल इत्यादि प्रमुख व्यक्तियों से उनकी भेंट हुई। देश-सेवाओं के लिये उन्हें 'सर' की उपाधि मिली। १८७० में उन्होंने हजरत मुहम्मद साहब की जीवनी पर कई लेख प्रकाशित किये। वर्ष के अन्त में भारत लौटने पर वे बनारसमें सब-जज नियुक्त हुये।

समाज-सुधारक—पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान की ओर मुसलमानों की अरुचि को दूर करने के लिये और उनके अन्ध विश्वासों को हटाने के लिये उन्होंने मुस्लिम समाज-सुधारक (Mohammadan Social Reformer) पत्र निकाला और नौ वर्ष तक उसका सम्पादन किया। इस पत्र के द्वारा मुस्लिम जगत का दृष्टिकोण बदलने में उन्होंने आश्चर्य

जनक कार्य किया। यद्यपि ऐसा करने में आरम्भ में मुल्लाओं ने उनका बड़ा भारी विरोध किया, उनको इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन कहा गया, हत्या की धमकी दी गई और उनके तथा कालिज दोनों के नष्ट करने के लिये प्रार्थना की गई। पर सर सैयद ने किसी की परवाह न की।

कालिज की स्थापना—सयद अहमद ने बुद्धिमान् मुसल्मानों की एक कमेटी भारतीय मुसल्मानों में ज्ञान का प्रचार करने के हेतु बनाई। इस कमैटी ने १८७२ में एक ऐंग्लो-ओरियेंटल कॉलिज खोलने का प्रस्ताव किया और १८७५ में उसकी स्थापना की। यह सर सैयद के जीवन की सबसे बड़ी सफलता थी। सन् १८७६ में पेंशन लेकर उन्होंने अपने आपको पूरी तरह कालिज की सेवा में लगा दिया।

सन् १८७८ में सर सैयद को लार्ड लिटन ने वायसराय की कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया। चार वर्ष वे इस पद पर रहे। १८८२ में वे शिक्षा-कमैटी के सदस्य बनाये गये। इस कमेटी में रह कर मुस्लिम-शिक्षा-सुधार के लिये उन्होंने महत्व-पूर्ण सुझाव रखे। सन् १८८२ में उन्होंने हैदराबाद तथा १८८४ में पञ्जाब का दौरा किया जहाँ उनका राजाओं के समान स्वागत हुआ तथा बहुत-सा दान कालिज के लिये उन्हें मिला। पञ्जाब में कर्तारपुर स्टेशन पर रामचन्द्र नामक एक व्यक्ति ने आठ रुपये नौ आने उन्हें दान में दिये जो कि उन्होंने अपने गाँव के स्कूल के विद्यार्थियों से एक-एक, दो-दो आना करके इकट्ठे किये थे। सर सैयद को इस दान से अत्यधिक प्रसन्नता हुई और उन्होंने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। यही सर सैयद के द्वारा स्थापित किया हुआ कालिज आज हमारे सामने अली

मुस्लिम यूनीवर्सिटी जैसी महान् संस्था के रूप में देश की सेवा कर रहे हैं।

कालिज, अपनी ज्ञाति और देश की सेवा में सर सैयद वृद्धावस्था में भी ऐसी प्रसन्नता से संलग्न रहते थे कि लोगों को आश्चर्य होता था। ऐसी बहुमूल्य सेवा करते हुये सर सैयद यथेष्ट उम्र पाकर परलोक सिधारे।

(६)

सर तेजबहादुर सप्रू

वंश और जन्म--सर तेजबहादुर सप्रू के पूर्वज काश्मीरी ब्राह्मण थे जो कि काफी समय से देहली में आकर बस गये थे। इनके बाबा पण्डित राधाकृष्ण को सरकार की बहुमूल्य सेवाएँ करने के कारण जागीर मिली हुई थी। इनके पिता पं० अम्बिकाप्रसाद इस जागीर के प्रबन्ध में संलग्न रहते थे। तेजबहादुर सप्रू का जन्म ८ दिसम्बर १८७५ को अलीगढ़ में, जहाँ उनके पितामह सर्विस में थे, हुआ था। १४ वर्ष की अवस्था में हाईस्कूल पास करके सर तेजबहादुर आगरा कालिज में पढ़ने गये। यहाँ से १८९४ में बी० ए०, आनर्स तथा १८९५ में एम०ए० की परीक्षा पास की दोनों परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके उपरांत वकालत की परीक्षा पास कर मुरादाबाद में वकालत आरम्भ करदी। यहाँ से शीघ्र ही वे अक्टूबर १८९८ में इलाहाबाद चले गये और वहाँ हाईकोर्ट में वकालत शुरू कर दी।

वकालत का पेशा और देश प्रसिद्धि—आरम्भ में तेज-बहादुर को यथेष्ट काम नहीं मिला। परन्तु इन्होंने अपना खाली समय योंही गँवाने के बजाय कानून के गहरे अध्ययन में लगाया जिससे आगे इन्हें बड़ी सहायता मिली। १९०२ में

इन्होंने कानून में डाक्टरेट की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की। इस समय से इनकी ख्याति का सूर्य उदय हुआ, जो कि अवस्था के साथ अन्त तक बराबर बढ़ता ही गया। सन् १९०६ में ये हाईकोर्ट के एडवोकेट बनाये गये। उस समय यह बड़ी मान की बात समझी जाती थी।

सन् १९०८ में तेजबहादुर को एक मुकदमा मिला जिसमें वे हाईकोर्ट के प्रमुख वकीलों के विपक्ष में उपस्थित हुये। इस मुकदमे में श्री सप्रू ने जो योग्यता प्रदर्शित की उससे न्यायाधीश भी दङ्ग रह गये और इस समय से उनकी गिनती प्रथम श्रेणी के वकीलों में होने लगी। उनकी वकालत चमक उठी और प्रथम श्रेणी के मुकद्मे उन्हें मिलने लगे, यहाँ तक कि सन १९४२ में वे सर रासबिहारी घोष के विरुद्ध एक मुकदमे में उपस्थित हुये और सफलता प्राप्त की। तेजबहादुर सप्रू का नाम न्यायालय जगत में भारतभर में छा गया और बड़े से बड़े मुकदमे अब देश के सभी न्यायालयों से उनके पास आने लगे। उनकी यह स्थिति उनके अंतिम समय तक बनी रही।

सर तेज केवल धन कमाने वाले वकील ही न थे, उससे भी ज्यादा महत्वशाली बात यह थी कि वे अपने पेशे की शान का बड़ा ही ध्यान रखते थे। कभी धन के लालच में उन्होंने कोई ऐसा काम नहीं किया जो शान और उदारता के विरुद्ध पड़ता हो और यही कारण था कि देश-विदेश में उनका इतना सम्मान था और वे वकीलों में आदर्शरूप में देखे जाते थे।

सार्वजनिक जीवन—सन् १८९८ में इलाहाबाद में आने के समय से ही सर सप्रू ने सार्वजनिक जीवन में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। सन् १९०० के लगभग उनके लेखों ने लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। और उसके बाद

वे बड़े ही आदर के साथ पढ़े जाने लगे। सन् १९१३ में वे प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य चुने गये। उसी वर्ष उन्हें प्रान्तीय राजनैतिक काँफ्रेंस का अध्यक्ष भी चुना गया। सन् १९१६ में वे अखिल भारतवर्षीय धारा-सभा के सदस्य चुने गये। और १९२० में वे केन्द्रीय सरकार के कानूनी सदस्य मनोनीत हुये। परन्तु दो वर्ष बाद ही स्वास्थ्य के कारण यह पद उन्हें छोड़ना पड़ा। इसी दो वर्ष में उन्होंने भारतीय कानून में देशी और विदेशी पक्षपात सूचक अनेक धाराओं को निकलवा दिया। सन् १९१८–१९ में माँटेगू-चेम्सफोर्ड सुधार योजना को तैयार करने वाली कमेटी के वे सदस्य रहे।

सन् १९१९ में काँग्रेस से मतभेद के कारण श्रीसप्रू ने उदार-दल में प्रवेश किया और वे Liberal Federation के १९२३ व १९२७ में सभापति भी बने थे और सभापति पद से उन्होंने बड़े ही सार-गर्भित भाषण भी दिये परन्तु मत-भेद के कारण इस पार्टी को भी सन् १९३१ में उन्होंने छोड़ दिया। सन् १९२३ में सरकार ने उन्हें 'साम्राज्य काँफ्रेंस' का सदस्य बनाकर लन्दन भेजा जहाँ ब्रिटिश उपनिवेशों में भार-तियों के स्थानके विषय पर उन्हें जोरदार बहस की। अगले वर्ष उन्होंने मांटेगू सुधार योजना के अन्तर्गत अल्पमतों से सम्बन्धित रिपोर्ट के तैयार करने में भाग लिया। इस कमेटी में श्रीजिन्ना भी उनके साथ थे।

संसार के सभी देशों के शासन विधान का श्रीसप्रू को गहरा अध्ययन होने के कारण तथा भारतीय राजनैतिक हलचलों से संबन्धित होने के कारण श्रीसप्रू ने तीनों गोलमेज परिषदों में प्रमुख रूप से भाग लिया। भारतीय संघ-विधान के ऊपर तो उन्होंने बड़े ही मूल्यवान विचार उपस्थित किये थे।

सन् १९३५ में यू० पी० सरकार की ओर से 'शिक्षितों की बेकारी-समस्या' पर एक जाँच कमेटी बिठाई गई। इस कमेटी के प्रधान पद से श्रीसप्रू ने जो रिपोर्ट उपस्थित की उसकी देश में सर्वदा बड़ी प्रशंसा हुई थी, परन्तु दुःख है कि तत्कालीन सरकार ने उस पर कोई कार्यवाई नहीं की।

प्रिवी कौन्सिल के सदस्य—सरतेज की इन बहुमूल्य सेवाओं के कारण सरकार ने उन्हें प्रिवी कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया। यह आदर केवल चार भारतियों को उस समय तक मिला था। सरकार और राष्ट्रीय नेता,(स्वयं गांधीजी) सरतेज को कितना आदरणीय मानते थे, इसका अनुमान इसी बात से लगता है कि कई बार सरतेज दोनों के बीच राष्ट्र के सर्वाधिक महत्वशाली प्रश्नों पर समझौते में प्रयत्नशील हुये थे और एक अंश में सफल भी।

उर्दू और फारसी साहित्य का ज्ञान— अँग्रेजी साहित्य तथा कानून के पण्डित होने के साथ ही साथ सरतेज उर्दू और फारसी भाषा के भी ऐसे महान विद्वान् थे कि सन् १९४३ में ईरान-संस्कृति मिशन को उनसे मिलकर उनकी विद्वत्ता पर बड़ा आश्चर्य हुआ था। हैदराबाद हाईकोर्ट में तो एकबार एक अरबी के दस्तावेज के पढ़ने में उनके प्रतिपक्षी श्रीमुहम्मदअली जिन्ना को उनके सन्मुख बड़ा ही लज्जित होना पड़ा था और अखबारों ने 'मौलाना सप्रू ने पण्डित जिन्नाह के लिये अरबी लेख का अनुवाद किया' शीर्षक लेख लिखे थे। उर्दू मानो उनकी मातृ-भाषा थी। वे अंजुमन-तरक्की उर्दू के कई साल तक सभापति रहे। इसका अभिप्राय यह नहीं कि सरतेज हिन्दीकी ओर उदासीन थे। लगभग साठ वर्ष पहिले काश्मीरी ब्राह्मणों में हिन्दी, संस्कृत अज्ञात वस्तुएँ थीं। सरतेज

के मन बहलाव के सबसे बड़े साधन मुशायिरा तथा उर्दू कवियों की सोहबत और उर्दू कविता थी। सर मुहम्मद इकबाल उनके अत्यन्त निकट के दोस्तों में थे।

भारतीय संस्कृति और उदारता के महान् प्रतीक— सरतेज में देशाभिमान और देश-सेवा की भावनायें कूट-कूट कर भरी थीं। वे जीवनमें हलकेपनके साथ कोई बात कहना या कोई काम करना जानते ही न थे। जो कोई भी शब्द वे कहते थे पूरी जानकारी और सोच-विचार के बाद ही कहते थे। भारत बंटवारे (पाकिस्तान) के प्रश्न को निष्पक्ष रूप से सुलझाने के लिये उन्होंने देश के पार्टी से असंबद्ध सर्वोच्च नेताओं और विद्वानों की एक कमेटी (No party conference) अपनी ओर से इसलिए बिठाई थी कि इस प्रश्न पर राजनीति, आर्थिक, भौगोलिक सभी दृष्टि से निष्पक्ष पूरी-पूरी जांच की जावे। कमेटी जिसने परिश्रम से कार्य करने के बाद जो ठोस रिपोर्ट देश के सन्मुख उपस्थित की थी वह भारतीय राजनैतिक में सदैव अमर रहेगी। पाकिस्तान का प्रस्ताव भारत के सभी वर्गों के लिये अहितकर साबित कर दिया गया, परन्तु श्रीजिन्नाह की अड़ के सन्मुख दलील बेकार हुईं और भारत के खंड २ होने से सरतेज की आत्मा को भारी ठेस लगी। हिंदू और मुसल्मान संस्कृतियों के मेल में विश्वास रखने वाला दूत मानों इससे तिलमिला उठा।

अत्यधिक परिश्रम से सरतेज का स्वास्थ्य पहिले से ही बिगड़ने लगा था। २० जनवरी सन १९४९ को लम्बी बीमारी के बाद यह महापुरुष बहुमुखी सफलता और प्रतिष्ठा प्राप्त कर हमसे सदाके लिये बिछुड़ गया। किसीने उससे विदाई में कहा:—

'जीवन-आंधी के प्रति इन्द्र धनुष था तेरा जीवन।'

श्री अरविन्द घोष

जन्म और शिक्षा—श्रीअरविन्द घोष का जन्म १५ अगस्त १८७२ को हुआ था। इनके पिता डाक्टर कृष्णधनघोष इन्डियन मैडीकल सर्विस में अफसर थे। अरविंद अपने पिता के तीसरे पुत्र थे। पिता ने सभी बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा प्रदान की थी। अरविन्द को उन्होंने ७ वर्ष की आयु में इङ्गलैंड भेजा, जहाँ उन्होंने १४ साल तक, अध्ययन कर प्रथम श्रेणी में कैम्ब्रिज से कालिज की शिक्षा समाप्त की। इसके उपरान्त इण्डियन सिविल-सर्विस परीक्षा में भी वे सफल हुये, परन्तु घुड़सवारी परीक्षा में सम्मिलित न हो सकने के कारण इस सर्विस में लिये नहीं जा सके। इसी समय गायकवाड बड़ौदा ने उनकी प्रतिभा देखकर उन्हें अपने यहाँ नियुक्ति दी। १८९३ में वे भारत लौटे।

चौदह वर्ष तक इङ्गलैंड में रहकर अरविंद ने पश्चिमी साहित्य तथा संस्कृति का गहरा अध्ययन किया था। ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन तथा इटैलियन भाषाओं के वे अच्छे विद्वान् होगये थे। परन्तु पूर्वी संस्कृति से वे पूर्णतः अनभिज्ञ थे। भारत आने पर बंगला उन्हें आरम्भ से सीखनी पड़ी।

पूर्वी संस्कृति की छाप—बड़ौदा में आकर शीघ्र ही वे स्टेट कालिज के वाइस-प्रिंसिपल होगये। और उन्होंने अब भारतीय दर्शन, संस्कृति का अध्ययन और योग का अभ्यास आरम्भ किया। कुछ सुन्दर कविताएं लिखीं तथा रामायण और महाभारत के कुछ अन्शों का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया।

स्वदेश प्रेम—अरविन्द अपनी मातृ-भूमि को अत्यधिक प्रेम करते थे और उसको स्वतन्त्र देखने को उत्सुक रहते

थे। बङ्गाल में स्वतन्त्रता आंदोलन की लहर से आकर्षित होकर, बड़ौदा छोड़कर कलकत्ता आये और राष्ट्रीय शिक्षा सभा (National Council of Education) के सभापति होगये। शीघ्र ही वन्देमातरम् नामक समाचार पत्र निकालना इन्होंने आरम्भ कर दिया। इस पत्र पर सरकार ने एक मुकद्दमा चलाया। अरविन्द ने, राष्ट्रीय शिक्षा संस्था को सरकारी रोष से बचानेके लिये उससे त्याग पत्र दे दिया।

पूर्ण स्वराज की मांग—अरविंद का राजनैतिक जीवन १६०८ से आरम्भ होता है। वे 'पूर्ण-स्वराज्य' के कट्टर प्रवर्तक थे। परन्तु अरविंद का लक्ष्य कभी भी निरा राजनैतिक अथवा सांसारिक नहीं रहा। स्वतन्त्रता से उनका तात्पर्य था सारे राष्ट्र की आध्यात्मिक जागृति। वे सदैव कहा करते थे कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का नेता 'प्रभु' है। भारतीय 'सनातन धर्म' को पाश्चात्य सभ्यता से आच्छादित देखकर वे बड़े दुखी होते थे। सांसारिक हलचलों के पीछे उन्हें ईश्वरीय शक्ति नजर आती थी और उनका कहना था कि इस शक्ति के प्रति पूर्णतः आत्म-समर्पण करना ही जीवन की सर्वोच्च प्राप्ति है। श्रीअरविंद अच्छे वक्ता नहीं थे, परन्तु 'वन्देमातरम्' के सम्पादकीय लेखों ने उन्हें देश प्रसिद्ध बना दिया था। सन् १६०७ में अरविंद सूरत की राष्ट्रीय कान्फ्रेंस के सभापति बने। इसी समय बङ्गाल सरकार ने उन पर 'सरकार विरोधी साजिश' का दोष लगाकर, मुकद्दमा चलाया परन्तु वे बरी हुये। कुछ समय बाद सरकार ने एक क्रान्तिकारी कार्यवाही में भाग लेने के सन्देह में उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया।

जेल जीवन— जेल में एकदम अकेले रहने के कारण

अरविन्द ने सब ओर से ध्यान खींचकर, अपना पूरा प्रयत्न जीवन के उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति में लगा दिया। 'कर्मयोगी' में जिसके वे सम्पादक थे, उन्होंने लिखा 'भारत की आत्मा तो धर्म में ही जगी थी और वहीं उसकी विजय हुई थी!' जेल जाने से पूर्व भी उन्होंने भारत के दैवी लक्ष्य में अटूट श्रद्धा प्रकट करते हुये लिखा था, 'भारत की स्वतन्त्रता का ध्येय केवल राजनैतिक नहीं है, उसका अभिप्राय है वर्तमान मानवी-विकास-आन्दोलन में जगत की सेवा करना। ६ मई १६०६ को न्यायालय द्वारा उन्हें निर्दोष घोषित किये जाने पर वे जेल से छोड़ दिये गये।

राजनीति से अवकाश ग्रहण।

पांडचेरी प्रस्थान—फरवरी १६१० में श्रीअरविन्द चन्द्र नगर गये और अप्रैल में वहाँ से पांडुचेरी चले गये। तब से उन्होंने इस नगर को कभी नहीं छोड़ा। और उन्हीं के कारण पाँडुचेरी आज विश्व-विख्यात होगया है। काँग्रेस नेताओं ने इसके उपरान्त उन्हें कई बार राजनैतिक क्षेत्र में बुलाया; परन्तु वे कभी नहीं आये। देश बन्धु चितरञ्जनदास को उन्होंने लिखा, "प्रिय चित्तो, मैं अब कर्मक्षेत्र में अपने पुराने मनोभावों को लेकर नहीं उतरना चाहता। मैं उनसे ऊँचे लक्ष्य की खोज में हूँ। जिस दिन उसे प्राप्त कर लूंगा, उस दिन अपना कार्य उस आधार से करूँगा।"

मासिक पत्र—चार साल के एकान्त योगाभ्यास के बाद उपरोक्त उद्देश से उन्होंने 'आर्य' नामक अँग्रेजी मासिक-पत्रिका आरम्भ की, जिसमें उन्होंने भारतीय संस्कृति की विशेषताओं, वेदों की सच्ची शिक्षाओं, सामाजिक प्रगति, काव्य का

स्वरूप तथा विकास, एवं विश्व-बन्धुत्व इत्यादि विषयों पर सारगर्भित तथा मौलिक विचार उपस्थित किये। 'आर्य' का प्रकाशन १६२१ के बाद बन्द होगया।

योगी अरविंद का आश्रम—पाँडुचेरी में दस वर्ष के निवास के पश्चात् श्रीअरविन्द के आश्रम में सुविख्यात फ्राँसीसी दार्शनिक पॉल रिचार्ड सपत्नीक पधारे। कुछ समय बाद पॉल रिचार्ड तो चले गये, परन्तु उनकी पत्नी अपनी बलवती आध्यात्मिक निष्ठा के कारण, अपने गुरु को न छोड़ सकीं। गुरु ने मानो उनकी काया पलट करदी थी। उनकी आध्यात्मिक महानता का परिचय इसी में मिलता है कि श्रीअरविन्द ने उन्हें ही आश्रम का अध्यक्ष बनाया है। आश्रम की सफलता का बहुत कुछ श्रेय इसी महिला को है। सारा आश्रम उन्हें 'पुनीत-माँ' (Holy Mother) कहता है।

यह सत्यता से कहा जा सकता है कि बहुत अंश में इस आश्रम का जीवन भारत के सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है। ४०० आश्रम वासी अत्यन्त सहयोग तथा प्रेम के साथ रहते हैं। शिक्षा, चिकित्सा, छपाई, सिलाई, रसोई इत्यादि आश्रम के कितने ही विभाग हैं, जिनकी व्यवस्था आश्रम वासी करते हैं। इन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति के निमित्त अपना सर्वस्व आश्रम के प्रति न्यौछावर कर रखा है।

योगी अरविन्द के आदर्श—योगी अरविन्द मानव विकास पर बड़ा जोर देते हैं। वे कहते हैं:—(१) जिस योग का हम अभ्यास करते हैं वह केवल हमारी व्यक्तिगत मुक्ति के लिये नहीं वरन् मानव मात्र की मुक्ति के लिये है। (२) जगत मिथ्या नहीं, वरन् सत्य है, दैव की लीला है। (३) सम्पूर्ण

प्रकृति अपने में छिपे हुये मनोभावों की विकासमयी क्रिया है। (४)प्रभु कृपा और प्रभु साक्षात्कार तथा अपने पुरुषार्थसे मनुष्य दैवी-जीवन प्राप्त करता है। ऐसा दैवी जीवन और प्रभु दर्शन प्रत्येक प्राणी समयानुसार अवश्य प्राप्त कर अमर हो सकता है। (५) योग की पहिली सीढ़ी 'आत्म समर्पण का संकल्प' है। जो प्रभु से माँगते हैं, वह पाते हैं। जो बिना माँगे अपने को प्रभु के अर्पण करते हैं, उन्हें प्रभु अपने आप दे देता है।

सन् १६२६ से योगी अरविन्द बाहरी दुनिया से अलग होकर एकान्त-वास कर रहे हैं। परन्तु वे अपने देश और संसार की प्रगति के प्रति सजग हैं और समय-समय देश-विदेशों को अपना भाव-भरा संदेश भेजते रहते हैं, जो जोशीले लेखों तथा व्याख्यानों से कहीं अधिक शक्ति-दायक होते हैं। भगवान् उन्हें चिरजीवी करें।

---

(३)

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

[२५ दिसम्बर १८६१ से]

आधुनिक काल की महानतम भारतीय विभूतियों में से दो का जीवन चरित्र आप पढ़ चुके हैं। तीसरी इसी कोटि की महान आत्मा पं० मदनमोहन मालवीय थे। काँग्रेस के बुजुर्ग, श्रेष्ठ समाज-सेवी तथा हिन्दू-धर्म संस्थापक होने के नाते एवं विद्वत्त, चरित्र बल और सौजन्य की प्रति मूर्ति होने के कारण भारत में आपका स्थान पूज्य गाँधीजी के जैसा ही रहा। गाँधीजी और 'गुरुदेव' की भाँति विदेश आपको नहीं जानते थे, परन्तु देश में तो आपकी प्रतिष्ठा दोनों से किसी प्रकार कम नहीं थी। आपके व्यक्तित्व की ओजमय धवलता

का प्रभाव तो वर्णनातीय ही है, जिसने आपको एकबार देखा, वह सदा के लिये आपका होगया।

जन्म, शिक्षा और नौकरी—ऐसे नर श्रेष्ठ मालवीयजी का जन्म २५ दिसम्बर १८६१ को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पूर्वज मालवा से इलाहाबाद आये थे, इसी कारण वे मालवीय कहलाये। आपके पिता पं० बृजनाथजी संस्कृत के अच्छे विद्वान लेखक एवं कथावाचक थे। गवर्नमेंट स्कूल इलाहाबाद से १८७९ में आपने मैट्रिक तथा म्योर कालिज से १८८१ में बी० ए० पास किया। स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू, आपके सहपाठी थे। विद्यार्थी-जीवन में ही मालवीयजी ने 'हिन्दू-समाज' तथा 'प्रयाग-साहित्यिक-संस्था' को स्थापित किया था।

सन् १८८४ में इलाहाबाद गवर्नमेंट हाईस्कूल में ५०) रु० मासिक पर अध्यापक नियुक्त हुये। अध्ययन, अध्यापन दोनों स्थितियों में सार्वजनिक कामों में आपने इतनी प्रसिद्धि पाली थी कि सन् १८८६ में आप कलकत्ता काँग्रेस अधिवेशन में प्रतिनिधि रूप में भेजे गये। वहाँ पर आपके प्रतिभाशाली भाषण ने सबको मुग्ध कर लिया। उसीसे प्रभावित होकर काला कांकर के राजा साहिब ने आपको २५०) रु० मासिक पर अपने दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करने का आग्रह किया। आपकी वक्तृत्व-शक्ति को देखकर, काँग्रेस संस्थापक ह्यूम साहिब ने मालवीयजी से वकालत अध्ययन पर जोर दिया। अतः १८९१ में आपने वकालत पास कर १८९३ में हाई-कोर्ट में वकालत आरम्भ करदी।

कांग्रेस में—सन् १८८६ से काँग्रेस अधिवेशनों में मालवीयजी बराबर जाते रहे तथा उनकी कार्रवाइयों में अग्र-

गण्य भाग लेते रहे। आपके महत्वपूर्ण प्रस्ताव, भाषण तथा प्रतिभा की धाक चारों ओर बैठ चुकी थी। सन् १६०८ की लखनऊ प्रांतिक कांफ्रेंस के तथा १६०६ की भारतीय काँग्रेस अधिवेशन के आप सभापति हुये। तथा सन् १६१८ के दिल्ली अधिवेशन में फिर सभापति बनाये गये। इस प्रकार सन् १८८६ से लेकर जीवन पर्यन्त मालवीयजी ने काँग्रेस का पल्ला कभी नहीं छोड़ा। कभी तो विनम्र सेवक रूप में पीछे रहकर, कभी नेता के रूप में आगे आकर और आन्दोलन में जेल जाकर आपने काँग्रेस की विविध रूप से बड़ी सेवा की है यहाँ तक कि 'बापू' ने भी सदा आपको बड़े भाई रूप में ही देखा और अपनी प्रगतियों में सदा आपका परामर्श लिया।

धारा सभाओं में—मालवीयजी लम्बे समय तक प्रांतीय तथा धारा सभाओं के अग्रगण्य सदस्य रहे। सारे समय देश की आवाज को निर्भीकता के साथ अँग्रेजी शासन के सामने बुलन्द किया और शासक की बुराइयों की कड़ी आलोचना की। रौलट एक्ट तथा पञ्जाब-फौजी कानून पर तो आपके रोष पूर्ण भाषण चिरस्मरणीय होगये हैं। [illegible] से १६३० तक मालवीयजी इम्पीरियल कौंसिल के लगातार सदस्य रहे। इस बीच में १६१८ में रौलट एक्ट के विरोध में आपने सदस्यता से स्तीफा दिया था। सन् १६१८ में फौजी-शासन की मार से मूर्छित पञ्जाब की आपने स्वर्गीय श्रद्धानन्द के साथ अनुपम सेवा की थी। १६३० में असहयोग आन्दोलन छिड़ने पर आपने कौंसिल छोड़दी और सत्याग्रह में जेल गये।

नेताओं से मतभेद—मालवीयजी के जीवन में कई स्थान ऐसे मिलते हैं जहाँ देश-व्यापी लहर से अलग या विरोध में रहकर उन्होंने अपने प्रति कड़ी आलोचना को आमन्त्रित

किया है। परन्तु उसके कारण कभी आत्म-समर्पण नहीं किया। १६१६ के मांटफोर्ड सुधारों का बहुमतसे विरुद्ध आपने समर्थन किया। और उनके अन्तर्गत आप केन्द्रीय कोंसिल में गये। १६२१ में जहाँ सारे देश ने अँग्रेज युवराज की भारत-यात्रा का बहिष्कार किया वहाँ मालवीयजी ने हिन्दू-विश्व-विद्यालय में बुलाकर उनका स्वागत किया। १६२६ में लाला लाजपतराय के साथ तथा १६३४ में संप्रदायिक बँटवारे पर काँग्रेस से मतभेद हो जाने के कारण लोकनायक अणे के साथ आपने नेशनलिस्ट पार्टी बनाई और काँग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा। १६३६ के चुनावों में भी आपने प्रान्त में नेशन-लिस्ट पार्टी के उम्मीदवार अलग खड़े किये। परन्तु सब विरोध का आधार सदेच्छा ही थी। इसीलिये मालवीयजी काँग्रेस से दूर कभी न रहे और न देश-वासियों में आपके प्रति स्नेह या आदर में कोई अन्तर पड़ा।

सनातन हिन्दू-संस्कारों में प्रबल आस्था—मालवीयजी के वंश परिचय से उनकी हिन्दू-आस्तिकता सहज ही समझी जा सकती काँग्रेस और राष्ट्रीयता की इतनी लगन के साथ सेवा करते हुये भी आपने अपने सनातनी हिन्दू-पन को तथा हिन्दू-संस्कृति के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम को कभी हल्का नहीं होने दिया। 'हिन्दू-प्रेम' के कारण आपने कांग्रेस के साथ-साथ हिन्दू-महासभा को भी अपनाया। १६२२ से लेकर कई वर्षों तक आप उसके कर्णधार रहे। १६३४ में आप उसके सभापति बनाये गये। स्वामी श्रद्धानन्द तथा लाला लाजपतराय के साथ मिलकर आपने यह प्रयत्न किया कि हिन्दू-महासभा एक ओर हिन्दू-समाज की कुरीतियों को दूरकर, सनातन शास्त्रीय धर्म का पुनुरुत्थान करे तथा दूसरी ओर हिन्दुओं को

संगठित तथा बलवान बनाकर उनके राजनैतिक हितों का प्रतिनिधित्व करे। मालवीयजी के 'हिन्दू-प्रेम' में रूढ़ियों के लिये अथवा समाज भय के लिये कोई स्थान नहीं था। जैसा उनके 'अछूतोद्धार' तथा शुद्धि आंदोलन से स्पष्ट है। अस्पृश्यता के विरुद्ध तो वे बराबर युद्ध करते रहे। अछूतों को उन्होंने सदा गले लगाया उन्हें दीक्षा दी और उनके पक्ष में शास्त्रार्थ तक किया तथा 'मंत्र दीक्षा' पुस्तक भी लिखी। हिन्दू-युवकों को स्वस्थ, सदाचारी बनाने के उद्देश से जगह-जगह महावीर दल तथा अखाड़े उन्होंने स्थापित कराये। सनातन धर्म का प्रचार करने, विभिन्न सम्प्रदायों में मेल कराने, अनाथ, विधवा तथा गऊ मन्दिर तथा तीर्थों की रक्षा करने के हेतु आपने अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा की नींव डाली थी। इस सभा के अंतर्गत देश में आज सैकड़ों महावीर-दल, संस्कृत पाठशाला, कन्या-पाठशाला ऋषिकुल तथा अन्त्यज पाठशाला चल रही हैं। भारतीय नवयुवकों के लिये मालवीयजी ने पं० हृदयनाथ कुंजरू तथा श्रीराम बाजपेयी के साथ मिलकर १९१८ में अखिल भारतीय सेवा-समिति की स्थापना की।

हिन्दू-विश्व-विद्यालय—मालवीयजी के जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति उनका बनारस स्थित हिन्दू-विश्व-विद्यालय है। सन् १९०४ से ही आपको एक ऐसा विश्व-विद्यालय स्थापित करने की धुन सवार हुई जिसमें विद्यार्थी पाश्चात्य सभ्यता की भद्दी नकल से दूर रहकर, स्वस्थ हिन्दू संस्कारों में दीक्षित हो सकें, धर्म तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये उच्च-शिक्षा प्राप्त कर सकें, तथा विज्ञान, चिकित्सा, इञ्जीनीरियङ्ग उद्योग एवं कलाओं में देश योग्यता हासिल कर राष्ट्र की अनेक प्रकार

से सच्ची सेवा कर सकें। सन् १९११ में सुयोग पाकर आप इसके लिये धन एकत्रित करने निकले। राजे, महाराजे और धनिकों के दरवाजे पर भिखारी बनकर घूमे और इस प्रकार पांच वर्ष में एक करोड़ रुपया आपने जमा कर लिया। अन्त में ४ फरवरी सन् १९१८ को आपकी नट नालंदा का स्वप्न पूरा हुआ जब कि बसन्त-पञ्चमी के दिन बड़े समारोह के साथ तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने हिन्दू-विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। आज मालवीयजी का लगाया यह वृक्ष उत्तमता और आकार में प्रांत की ही नहीं, देश की प्रमुख संस्था है। मालवीयजी इस संस्था के वाइस चांसलर रहकर जीवन भर इसकी सेवा करते रहे। तथा अन्तिम समय में इसकी बागडोर विश्वविख्यात दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णनन के हाथ में दे गये।

हिन्दी-प्रेम तथा साहित्य-सेवा—हिन्दू-समाज की महती सेवा के साथ-साथ मालवीयजी की साहित्य सेवा भी उल्लेखनीय है। भारतेन्दुजी के कवि दरबार में 'मकरन्द' उपनाम से आप समस्या पूर्ति भेजा करते थे। प्रयाग में साहित्यिक सभा की स्थापना आपने पहिले ही की थी। १९०८ में आपने 'अभ्युदय' तथा १९१० में मर्यादा मासिक-पत्रिका आपने निकाली। सन् १९०० में आपके प्रयत्न से ही यह कानून बना कि अदालतों में उर्दू के साथ-साथ हिन्दी भी प्रयुक्त हो सकती है। 'लीडर', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' तथा 'इण्डियन यूनियन' पत्रों की संस्थापना में आपका पूरा-पूरा हाथ था। प्रयाग के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की स्थापना तथा सम्वर्धन में भी आपका बड़ा हाथ रहा है। दो बार आप उसके भी सभापति रहे थे।

जीवन, कार्यों की समीक्षा एवं प्रयाण—उपरोक्त बहुमुखी कार्यों में पूज्य मालवीयजी की महान् रचनात्मक वृत्ति का थोड़ा परिचय हमें मिलता है, परन्तु उनके साहस और पराक्रम का परिचय तो कांग्रेस की सेवा में ही तथा अछूतोद्धार आंन्दोलन में ही मिलता है। सन् १९३० में अगस्त मास में आपने दो वार अपने को जेल में झोंका। गांधी इरविन समझौते में आपने भाग लिया। अगस्त १९३१ में गांधीजी के साथ गोलमेज परिषद में विलायत गये। फिर १९३२ तथा १९३३ के निषिद्ध कांग्रेस अधिवेशनों की सभापतित्व करने को जाते हुये दो बार गिरफ्तार किये गये। १९३२ में हिन्दू-मुस्लिम समझौते का स्तुत्य प्रयत्न आपने किया। तथा उसके बाद स्वास्थ्य ठीक न होते हुये भी, अन्तिम समय तक क्रिप्स मिशन तथा अन्य राजनैतिक हलचलों में आप बराबर भाग लेते रहे तथा नेताओं को अपना परामर्श देते रहे।

अन्तिम समय में इस पुण्यात्मा को हिन्दू-मुस्लिम दंगों से भयानक आघात पहुँचा। नौआखाली के उपद्रव के तो समाचार पढ़कर आप शोक से मूर्छित होगये थे। इन समाचारों ने मानों आपके परम पुनीत जीवन को समय से पूर्व ही समाप्त कर दिया। १२ नवम्बर १९४६ को काशी में आध्यात्म, परोपकार और बलिदान से परिपूर्ण इन महामान्य नरश्रेष्ठ ने जगत् से विदा ली। इस प्रयाण के कुछ ही मास पश्चात् भारत माता की वह परतन्त्रता दूर हुई जिसके निमित्त यह महान् जीवन उत्सर्ग हुआ।

पूज्य मालवीयजी के मार्मिक शब्द तथा शिक्षाएं—

(१) सन् १९०९ लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के सभापति

पद से—"हमारे देश-वासियों की दशा कितनी दयनीय है। आज राष्ट्रभक्ति और मानवता दोनों का यह तकाजा है कि हम अपनी शक्ति का एक-एक कण मातृभूमि की प्यार भरी सेवा में लगादें।"

(२) नवयुवकों से:—

(१) चरित्र निर्माण को प्रमुख स्थान (२) निरोग काया के लिये नियमित व्यायाम की आदत डालो, (३) अपने देश, जाति और धर्म की सच्ची सेवा ही परमार्थ का सीधा उपाय है। (४) श्रीमद्भगवद्गीता का नियम से रोज अध्ययन, मनन करो।

(२) सन् १६०६, लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में सभापति पद से—"हमारे देश-वासियों की दशा कितनी दयनीय है।..........आज राष्ट्र भक्ति और मानवता दोनों का यह तकाजा है कि हम अपनी शक्ति का एक-एक कण मातृ-भूमि की प्यार भरी सेवा में लगायें।

आज पूरे चालीस वर्ष वीत जाने के वाद भी कितने सच्चे हैं ये शब्द ! क्या हम उनकी ओर ध्यान देंगे ?

---

(४)

'वृद्ध पितामह' दादाभाई नौरोजी

[१८२५-१६१६]

जन्म और शिक्षा—हमारी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के भारतीय जन्मदाताओं में सबसे अग्रगण्य नाम श्रीदादाभाई नौरोजी का है। आपका जन्म, आज से लगभग सवासौ वर्ष

पूर्व ४ सितम्बर सन् १८२५ के दिन बम्बई में हुआ था। आपके पूर्वज पारसियों में पुरोहिताई का काम करते थे। चार साल की आयु में ही पिता का देहान्त हो जाने के कारण, आपकी बुद्धिमती माता को अकेले ही आपके लालन-पालन तथा जीवन निर्माण का भार उठाना पड़ा। एलफिंस्टन कालिज से विशेष प्रतिभा के साथ अपनी शिक्षा समाप्त कर आप वहीं गणित के प्रोफेसर होगये, और १८४५ से १८५५ तक इस पद पर बड़ी योग्यता से कार्य करते रहे।

सार्वजनिक कार्य—अध्यापन कार्य के साथ-साथ बम्बई में दादाभाई सार्वजनिक जीवन के विविध क्षेत्रों में भी प्रमुख रूप से काम करते रहते थे। बम्बई में कन्याओं के लिये सबसे पहिला स्कूल आपने खोला। देश में लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान आकर्षित करने का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। दस वर्ष के बम्बई के अध्यापक जीवन में अनेक संस्थाओं के व्यवस्थापक आप रहे, जिनमें प्रमुख हैं:—स्टूडेन्टस् लिटरेरी साइण्टिफक सोसाइटी, गुजराती ज्ञान-प्रचारक-सभा, बम्बई एसोसियेशन, पारसी धर्म-सुधारक-मण्डली, विक्टोरिया एण्ड एडवर्ड म्यूजियम और पुत्री-पाठशाला। इनके कार्यवाहन के साथ-साथ आपने १८५१ में 'रास्त गुफ्तार' (सत्यवादी) नाम का पत्र भी निकाला।

इङ्गलेंड में—१८५५ में दादाभाई व्यापार की ओर झुके और 'कामा एण्ड कम्पनी' की लन्दन-स्थित कोठी का काम सँभालने लन्दन चले गये। इंगलेंड में दादाभाई ने अपना सार्वजनिक सेवाक्रम ज्यों का त्यों बनाये रखा। भारतवासियों की शोचनीय अवस्था पर पत्रों में लेख लिखना भाषण देना और उसके सुधार के लिये ब्रिटिश सरकार को मजबूर करना यही

आपका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से 'लन्दन इण्डियन सोसाइटी' तथा 'ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन' की आपने स्थापना की।

इसके अतिरिक्त कुछ समय तक आप लन्दन यूनीवर्सिटी में गुजराती के प्रोफेसर भी रहे। तेरह वर्ष तक भारत के लिये इङ्गलेंड में महान आन्दोलन कर सन १८६६ में आप भारत लौटे। बम्बई में आपका विराट स्वागत हुआ और तीस हजार की थैली भेंट की गई। यह सारी रकम आपने देश के कामों में ही लगादी।

स्वदेश में—भारत में आकर दादाभाई ने देशवासियों की आर्थिक स्थिति का गहरा अध्ययन कर उनकी शोचनीय आर्थिक स्थिति के आश्चर्यजनक आंकड़े सबसे पहिले संसार के सन्मुख रखे। १८७३ में आप पार्लियामेंट की सैलेक्ट-कमेटी के सामने गवाही देने फिर इङ्गलेंड गये। १८७४ में वहाँ से लौटने पर, बड़ौदा नरेश ने आपको अपना दीवान बनाया। १८८५ में आप बम्बई कौंसिल के सदस्य बने और उसी वर्ष आपने मिस्टर ह्यूम के साथ मिलकर कांग्रेस की स्थापना कराई।

पार्लियामेंट की सदस्यता तथा कांग्रेस के अध्यक्ष—उस समय के सभी कांग्रेसी नेता ब्रिटिश सरकार के न्याय में विश्वास रखते थे। इसलिये दादाभाई का विश्वास था कि भारतियों के दुःख दूर करने के लिये भारत की अपेक्षा लन्दन में आंदोलन करना अधिक लाभकारी है। पार्लियामेंट में भारत की आवाज उठाने के उद्देश्य से दादाभाई ने उसके सदस्य होने का निश्चय किया। सन् १८८६ में आप इसी उद्देश्य से लन्दन जाकर पार्लियामेंट के चुनाव में खड़े हुये, परन्तु सफलता न

मिलने पर भारत लौट आये। यहाँ कांग्रेस के दूसरे कलकत्ता अधिवेशन के आप सभापति बनाये गये।

१८८७ में आपने लन्दन जाकर लेखों तथा भाषणों द्वारा भारतीय आंदोलन फिर आरम्भ कर दिया। सन् १८६२ के पार्लियामेंट चुनाव में सुरेन्द्रनाथ, बनर्जी, चितरञ्जनदास आदि सभी भारतियों के अटूट परिश्रम से आप पार्लिमेंट के सदस्य बने। उस समय एक भारतीय के लिये अँग्रेज प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध पार्लियामेंट का सदस्य बनना बड़े गौरव की बात थी। दादाभाई का इङ्गलेंड में बड़ा सम्मान था। 'Grand old man of India' कहकर वे वहाँ प्रसिद्ध थे। इस विजय के उपलक्ष में १८६३ में फिर दादाभाई कांग्रेस के सभापति बनाये गये। पार्लियामेंट में आप भारतियों के लिये बराबर लड़ते रहे। १८६५ में आपके ही प्रयत्नों से भारतियों की आर्थिक जाँच के लिये एक कमीशन भी बिठाया गया था। १६०६ में तीसिरी बार कांग्रेस के सभापति चुने जाने पर आप भारत लौटे। इस समय वङ्ग-भङ्ग आंदोलन के कारण देश में एक अजीब हलचल थी। कांग्रेस में नरम और गरम दलों में भारी मतभेद था। दादाभाई ने कांग्रेस का अध्यक्ष होकर दोनों पक्षों को एक साथ रखा और सभापति पद से 'स्वराज्य' शब्द की भावना सबसे पहिले देश को प्रदान की। 'स्वशासन', 'स्वदेशी', 'राष्ट्रीय-शिक्षा' ये शब्द १६०३ की कांग्रेस से ही देश में व्यापक बने।

स्वदेश लगन की पराकाष्ठा और निधन—दादाभाई की देश प्रीति का अच्छा परिचय हमें इस बात में मिलता है कि ८१ वर्ष की वृद्धावस्था में वे फिर एकबार लन्दन गये और वहाँ पूर्ववत: भारत के लिये आंदोलन आरम्भ कर दिया। देश और विदेश में सभी उनकी कार्य क्षमता और लगन को देखकर

आश्चर्य करते थे। जीवन में चैन से बैठना उन्होंने कभी जाना ही नहीं। अन्त में आपको कार्याधिक्य से बीमार होकर स्वदेश लौटना पड़ा। यहाँ अपने गाँव करसोवा में ३० जून १९१७ को आपका देहावसान होगया। आपके ये शब्द हमें हमेशा याद रहेंगे, "मैं जो कुछ हूँ, देश की बदौलत हूँ, मेरा फर्ज है कि मैं अपनी योग्यता, कार्य क्षमता, शरीर, मन और आत्मा जो कुछ भी मेरे पास है, निरन्तर देश की सेवा करूँ।" धन्य है, इन शब्दों को अक्षरशः आपने सर्वदा निभाया।

---

(५)

गोपाल कृष्ण गोखले

[१८६६–१९१५]

जन्म और शिक्षा—बम्बई प्रान्त के रत्नागिरि जिले को कई महान् विभूतियों की जन्म-भूमि होने का श्रेय प्राप्त है। इसी जिले के कोतलूक नामक गाँव में ९ मई १८५६ के दिन महामान्य गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म हुआ। गोखले के पूर्वज धनी न होते हुये भी अपनी आन के लिये सदा से प्रतिष्ठित माने जाते थे। उनके पिता कृष्णराव का रत्नागिरि में बड़ा आदर था। उनकी माता सत्यभामा बाई एक विनम्र, निष्ठावान् दयालु हिन्दू गृहणी थीं। गोपालराव को उनसे अत्यधिक प्रेम था।

गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेने पर दस वर्ष की अवस्था में गोपालराव अपने बड़े भाई गोविन्दराव के साथ

कोल्हापुर के अँग्रेजी स्कूल में भेजे गये। परन्तु शीघ्र ही पिता का देहान्त हो जाने के कारण, इनके भाई को घर का भार सँभालना पड़ा। पढ़ना छोड़कर, कोल्हापुर रियासत में उन्होंने १५) मासिक की नौकरी करली और उसमें से केवल ७) परिवार के लिये रखकर ८) मासिक गोपालराव को पढ़ने के निमित्त देना स्वीकार किया। इसी सहायता पर अत्यन्त मितव्ययुता और लगन के साथ अध्ययन करते हुये गोपालराव ने १८८१ में मैट्रिक पास किया, और कोल्हापुर के राजाराम कालिज में भर्ती हुए। यहाँ से १ वर्ष के लिये दक्षिण कालिज पूना में गये और वहाँ से एलफिंस्टन कालिज बम्बई में जाकर उन्होंने १८ साल की अवस्था में बी० ए० की परीक्षा पास की। यहीं से २०) मासिक की छात्रवृत्ति भी उन्हें मिली।

अध्यापक—इसके उपरांत पहिले तो गोखले पूना के इञ्जीनियरिङ्ग कालेज में भर्ती हुए, परन्तु बाद में वहाँ के 'न्यू-इङ्गलिश स्कूल' में ३५) मासिक पर अध्यापक होगये और साथ ही 'दक्षिण कालिज' में कानून (Law) का अध्ययन भी करते रहे। अपनी आमदनी आरम्भ होते ही गोखले का सबसे पहिला कार्य अपने बड़े भाई का ऋण-शोधन करना था।

पूना में इस समय तीन महापुरुष थे जिनका प्रभाव गोखले पर पड़ा। एक तो लोक-मान्य तिलक, दूसरे आगरकर और तीसरे महादेव गोविंद रानडे। इन महानुभावों ने मिलकर पूना में 'डेकन एजूकेशनल सोसाइटी' की स्थापना की थी। इसी सोसाइटी के अन्तर्गत गोखले का 'न्यू इङ्गलिश स्कूल' था कितने ही शिक्षा प्रेमी अध्यापक २० वर्ष तक केवल ७५) रु० मासिक पर, इस संस्था के अन्तर्गत कार्य करने का व्रत लेकर अध्यापन कार्य करते थे। इन त्यागी महात्माओं के प्रयत्न से

शीघ्र ही सोसाइटी का स्कूल, फर्ग्यूसन कालिज होगया और भारत के बड़े-बड़े सपूत कालांतर में यहाँ से पढ़कर निकले।

गोखले अपना अध्यायन कार्य बड़े मनोयोग से करते थे। विद्यार्थियों के साथ उनका संबन्ध केवल कक्षा और पुस्तकों तक ही सीमित नहीं था। वे अपने को उनके चरित्र निर्माण का भी उत्तरदायी मानते थे, उनके हृदयों में देशभक्ति, कर्तव्य-निष्ठा और स्वालम्बन के भाव भरकर उन्हें सच्चा नागरिक बनाने के कार्य में संलग्न रहते थे। यद्यपि वे आरम्भ में अँग्रेजी के अध्यापक थे, परन्तु गणित, इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र इत्यादि सभी विषयों का इतना गहरा अध्ययन उन्होंने कर लिया था कि जब कालिज में आवश्यकता पड़ी तो इन विषयों का अध्यापन भी बड़ी योग्यता से वे कर सके।

गोखले के अध्ययन और योग्यता सम्पादन में सबसे अधिक प्रभाव महादेव गोविन्द रानाडे का था। रानाडे अपने समय के प्रमुख भारतीय थे। अनेक विषयों के महान् विद्वान् होने के साथ-साथ, वे बड़े समाज सुधारक तथा राजनैतिक नेता थे। पिता के सहपाठी होते हुए भी गोखले का परिचय उनसे पूना में १८८७ में ही हुआ। पहिली भेंट में ही गोखले का हृदय उन्होंने जीत लिया और दोनों उसी समय से सबे गुरु-शिष्य बन बैठे।

सार्वजनिक जीवन और राजनीति प्रवेश—पूना में उस समय तिलक तथा रानाडे द्वारा सञ्चालित एक 'सार्वजनिक सभा' थी, जिसमें राजनैतिक प्रश्नों पर विचार होता था तथा एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकलती थी। सन् १८८७ में गोखले इस सभा के मन्त्री बनाये गये तथा इस पत्रिका के सम्पादक

सन् १८८६ लगभग तिलक तथा रानाडे में मतभेद होगया। रानाडे ने 'डेक्केन-सभा' नाम की एक नई संस्था स्थापित की। गोखले को शिष्य के नाते इस सभा का मन्त्री बनना पड़ा। इसके साथ-साथ कॉलिज में तिलक के स्थान पर गणित का अध्यापक बनना पड़ा और कालेज का मन्त्री भी साथ ही 'सुधारक' नामक साप्ताहिक-पत्र का सम्पादन तो गोखले पहिले से ही बड़ी योग्यता के साथ-साथ करते आरहे थे। उसे भी जारी रखा।

गोखले का राजनीति प्रवेश १८६० से आरम्भ होता है। इस वर्ष काँग्रेस अधिवेशन में नमक-कर हटाने के प्रस्ताव पर बड़ा ही सुन्दर भाषण इन्होंने दिया। १८६२ के अधिवेशन में फिर सरकारी नौकरियों में अधिक से अधिक भारतीय लिये जाने के पक्ष में इनका बड़ा सारगर्भित भाषण हुआ। सन् १८६५ में काँग्रेस के पूना अधिवेशन के आप मन्त्री बनाये गये। इस समय तक गोखले की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। भारतीय अर्थशास्त्र के वे बड़े अधिकारी माने जाते थे। और १८६६ में भारत सरकार के बजट की जाँच करने वाले बेल्बी कमीशन के सामने गवाही देने के लिये दीनशा वाचा के साथ आपको भी लन्दन भेजा गया। वहाँ आँकड़े उपस्थित कर अकाट्य दलीलों से आपने साबित कर दिया कि भारत सरकार अधिकतर रुपया, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि जनहित-कार्यों में लगाने की बजाय सेना और गोरे अफसरों पर खर्च करती है। अँग्रेज भारत का आर्थिक शोषण कर रहे हैं। इस गवाही से गोखले की धाक बहुत बढ़ गई। भारत लौटने पर वे बम्बई कौंसिल में गोखले जीवन भर अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा, उद्योग तथा कृषि उन्नति के निमित्त बिल पेश करते रहे, पर

नौकरशाही ने उनकी एक न मानी।

सन् १६०५ में ला० लाजपतरायके साथ गोखले भारतीय आंदोलन करने इङ्गलैंड गये। पचास दिन में ४५ भाषण वहाँ दिये, अनेकों लेख लिखे तथा पार्लियामेंट के सदस्यों से मिले। उसी वर्ष देश लौटने पर काँग्रेस के काशी अधिवेशन के आप सभापति बनाये गये। आपने बङ्गाल का दौरा किया और फिर सभापति पद से बङ्ग-विच्छेद तथा कर्जन के शासन की कड़ी आलोचना की।

सन् १६०६-७ में काँग्रेस में नरम-गरम दल की कलह आरम्भ हुई। गोखले नरम दल के नेता थे और तिलक गरम दल के। सूरत अधिवेशन (१६०७) में इस कलह नेबड़ा उग्र-रूप धारण किया। गोखले ने दोनों दलों में मेल कराने की चेष्टा की पर असफल रहे। सन् १६०७-१४ तक काँग्रेस नरम दल के हाथ में रही।

दक्षिण अफ्रीका में—सूरत कांग्रेस के बाद गोखले, द० अफ्रीका के भारतियों के आंदोलन में सहायता पहुँचाने के हेतु वहाँ गये। वहाँ पूज्य गाँधीजी के नेतृत्व में आन्दोलन चल रहा था। दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने गोखले का स्वागत किया। गोखले ने भारतियों की समस्याओं का स्वयं अध्ययन किया और सरकार के सामने सुझाव रखे, जिनमें से उन्हें व्यापार-लाइसेंस देने, उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करने तथा रंग-भेद को दूर करने के संबन्ध में वायदे भी सरकार ने किये। परन्तु गोखले के भारत लौटते ही सरकार अपने वायदे भूल गई। अतः पूज्य गाँधीजी को अपना सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा। गोखले ने इस आन्दोलन को धन तथा प्रचार द्वारा भारत से सहायता पहुँचाने में अपने

आपको लग्न दिया। तथा कौंसिल में आपने एक बिल भी पास कराया जिससे भारतीय मजदूरों का नेटाल भेजना वन्द कर दिया गया। फलतः पूज्य गाँधीजी को अपने प्रयत्न में सफलता मिली। गोखले ने इस सहायता से उनका दिल ऐसा जीत लिया कि वे उन्हें अपना राजनैतिक 'गुरु मानने' लगे। (देखिये 'आत्म कथा' २ भाग अ० १७)।

फिर लन्दन में—सन् १६०८ में गोखले ब्रिटिश सरकार को भारतियों को अधिक अधिकार देने तथा कौंसिलों में सीट बढ़ाने पर राजी करने के लिये फिर लन्दन गये। भारत-मन्त्री लार्ड मोरले ने उनके परामर्श को माना और फलस्वरूप १६१० के मिंटो मोरल सुधार भारत को मिले। परन्तु इस सुधारों में नौकरशाही ने अपनी कूट नीति से मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व दे दिया। जिससे गोखले को बड़ा दुःख हुआ। यही वात आगे जाकर हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष का कारण हुई।

भारत-सेवक-समिति—तथा अन्य कार्य—राजनैतिक दायरे के बाहर गोखले ने और भी अनेकों महत्वशाली कार्य किये थे जिनमें से भारत-सेवक-समिति (Servants of India Society) की स्थापना विशेष उल्लेखनीय है। १२ जून १६०५ को पूना में आपने इसकी नींव डाली थी। इसके योग्य सदस्यों को ५ वर्ष तक भारतीय राजनीति एवं अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन करने तथा सेवा कार्य में ट्रेनिङ्ग ले लेने के के बाद केवल जीवन-निर्वाहकारी वेतन पर आमरण देश-सेवा में जुटे रहना होता थी। यह संस्था आज भी विद्यमान है। इसने बाढ़, अकाल, महामारी के अवसरों पर देश की बड़ी

सेवाऐं की हैं। अनेक जगह इसकी शाखाऐं हैं। जैसे बम्बई प्रान्त में ऋण-निवारक समिति तथा सोशल—सर्विस-लीग इसी के अन्तर्गत काम कर रहीं हैं। श्रीनिवास शास्त्री, ठक्कर बापा तथा पं० हृदयनाथ कुँजरू जैसे महापुरुष इसके सदस्यों से हैं।

गोखले के अन्य कार्यों में विशेष उल्लेखनीय हैं, (१) अपने गुरु रानाडे की पुण्यस्मृति में पूना में Ranade Economic Inspifupe की स्थापना (२) सन् १८९६ की बम्बई प्रान्तीय महामारी (प्लेग) में पीड़ितों की सेवा (३) अस्पृश्यता निवारण चेष्टा तथा (४) हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयत्न।

जीवन के शेष दिन—दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह की सहायता में गोखले को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा। इसके बाद ही एक सरकारी कमीशन भारतियों के उच्च पदों पर नियुक्त करने के प्रश्न पर बिठाया गया। गोखले इसके सदस्य होकर दोबार लन्दन गये। वहाँ इतना घोर परिश्रम उन्होंने किया कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और उन्हें भारत लौटना पड़ा। स्वास्थ्य उनका बिगड़ता ही गया। १३ फरवरी सन् १९१५ को दक्षिण अफ्रीका से लौटकर गाँधीजी उन्हें देखने पूना गये। गोखले गाँधीजीको इतना प्यार करते थे कि डाक्टरों की राय के खिलाफ़ वे उनकी स्वागत पार्टी में गये और जाते हुये गिर पड़े। १९ फरवरी सन् १९१५ की रात को इस महान देशभक्त, तपस्वी के प्राण पखेरू उड़ गये। स्वयं लोक मान्य के शब्दों में 'देश ने अपना बहुमूल्य हीरा और भक्त शिरोमणि खो दिया।'

———

सुभाषचंन्द्र बोस

आपके जीवन का एक मात्र लक्ष देश-सेवा था और इसी निमित्त आपने धन, सम्पति, और आई. सी. ऐस. का पद तक ठुकरा दिया। वह आनुनिक समय के भीष्म थे जिन्होंने सेवा निमित्त हीं विवाह न करने की प्रतिज्ञा की और इसका पालन किया।

इनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ बङ्गाल के चौबीस परगना' नाम के जिले में कोदालिया नामक गाँव में रहते थे। यह कटक में सरकारी वकील थे।

कलकत्ते में इन्होंने एक भवन निर्माण कराया। सुभाष बाबू सन् १९१२ से इसी मकान में रहते थे।

जन्म और शिक्षा—यह २३ फरबरी, सन् १८९७ ई० में कटक में पैदा हुये। स्काटिश चर्च कालिज से बी० ए० की परीक्षा पास करके पिता ने सिविल्ल सरविस परीक्षा हेतु विलायत भेजा पर यह सन् १९२१ में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से बी. ए. पास करके भारत लौट आये।

विचारों में परिवर्तन—विद्यार्थी जीवन में इनके गुरु बेनीं माधव के चरित्र का इन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। यह दीन दुखियों के सहायक बन गये और डा० सुरेश द्वारा स्थापित आश्रम के भी सदस्य बन गये जिसका उद्देश्य देश सेवा ही था।

गुरु की खोज—एक दिन गुरु की खोजमें घरसे निकल पड़े और दिल्ली, मथुरा, काशी, गया इत्यादि स्थानों में भ्रमण किया इस अभिप्राय से कि कोई सच्चा गुरु मिले। निराश होकर घर लौट गये।

असहयोग—सन् १६२१ में आई. सी. एस. का पद ठुकराकर देशबन्धु चितरञ्जन दास के पास चले गये और असहयोग आन्दोलन में लग गये। चितरञ्जन दास के नेशलन कालिज और समाचार पत्र का कार्य भी इन्हीं के हाथों में छोड़ दिया गया। सन् १६२१ में देशबन्धु और यह दोनों गिरफ्तार हो गये और इनको पाँच मास की सजा का दण्ड मिला।

गया कांग्रेस—गया की काँग्रेस में चितरञ्जन दास के कौंसिल प्रवेश के प्रस्ताव का इन्होंने भी समर्थन किया पर प्रस्ताव गिर गया। पं० मोतीलाल नेहरू द्वारा स्थापित स्वराज दल में भी यह शामिल होगये। और १६२२ में इन्होंने युवक दल की स्थापना की।

कलकत्ता कारपोरेशन—सन् १६२४ ई० में आप निर्विरोध कलकत्ता कारपोरेशन के एक्जिक्युटिव आफिसर चुने गये।

माण्डले जेल—१६२४ ई० में यह गिरफ्तार करके अलीपुर जेल भेज दिये गये। वहाँ से बरहमपुर और फिर मांडले जेल भेजे गये। यहाँ इनके बहुत बीमार हो जाने पर सरकार स्वीटजरलैंड चले जाने की शर्त पर छोड़ने को तैयार थी पर सुभाष बाबू ने इस शर्त को अस्वीकार किया। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और अन्त में लाचार होकर सरकार को इन्हें छोड़ना ही पड़ा। घर पर आने पर फिर स्वस्थ्य होकर सेवा में लीन होगये।

कलकत्ता कांग्रेस—सन् १६३२ ई० में कलकत्ते काँग्रेस के अधिवेशन में सुभाष बाबू ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया पर महात्मा गाँधी के समझाने पर यह प्रस्ताव पास हो गया। इसके कुछ दिनों बाद ही यतीन्द्रनाथ की मृत्यु पर उनकी

सेवाओं की विषय में अपने विचार प्रकट करने के अपराध में इनको गिरफ्तार कर लिया गया और ६ मास की कड़ी सजा हुई। इसी समय इर्विन और महात्मा गाँधी के समझौते के फल स्वरूप अन्य नेताओं के साथ सुभाष बाबू भी छोड़ दिये गये। पर गोलमेज सम्मेलन सफल न होने पर फिर गिरफ्तारियाँ होने लगीं। काँग्रेस के आन्दोलन स्थगित करने के प्रस्ताव का आपने विरोध किया पर गाँधीजी की इच्छा से आपकी न चली।

नव जन भारत सभा—मथुरा में होने वाले नव-जवान भारत सभा के अधिवेशन में आप सभापति बनाये गये आपने कृषकों और श्रमकों की दशा पर व्याख्यान दिया और इसी के कारण आप फिर गिरफ्तार कर लिये गये। वहाँ फिर इनका स्वास्थ्य गिरने लगा। और विदेश चले जाने की शर्त पर छूटकर यह स्वीटजरलैंड चले गये। स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर वहाँ रोम, लन्दन, फ्रान्स, जर्मनी इत्यादि की यात्रा की। मुसोलिनी और डी० वेलरा से भी मिले। इसी समय पिताजी के रोग ग्रसित होने के कारण आपको देश आना पड़ा और मृत्यु की चोट सहकर फिर लौट गये।

लखनऊ अधिवेशन में सम्मिलित होने की लालसा से पं० नेहरू के निमन्त्रण पर यह भारत आये पर सरकार ने आते ही इन्हें गिरफ्तार कर लिया। परन्तु जब १९३७ में काँग्रेस ने मन्त्री पद ग्रहण किया तब इनको फिर छोड़ दिया गया।

काँग्रेस सभापति—विदेश से लौटने पर आप हरि-पुरा अधिवेशन के सभापति चुने गये। अब काँग्रेस में रामगढ़ और त्रिपुरी के अधिवेशन के बाद दो दल हो गये। सुभाष अपने दल को (Forward Block) लेकर पृथक हो गये।

अग्रगामी दल—(Forward Block) त्रिपुरी काँग्रेस

के भी सभापति सुभाष बाबू ही हुये। गाँधी दल के इस बात के विरोध करने पर काँग्रेस में फूट पड़ गई। आपने अग्रगामी दल स्थापित किया और कुछ दिनों में ही आपके विचारों से देश प्रभावित हो गया। आपने राष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र दे दिया। १६३० में रामगढ़ की काँग्रेस में भी आपने बड़ा उत्साह प्रकट किया और फिर कलकत्ते में वेल स्मारक के विरुद्ध आन्दोलन में आपने पूर्णशक्ति से भाग लिया। इसके फल स्वरूप आप जेल भेजे गये। वहाँ आपने अनशन किया और तब स्वास्थ्य बिगड़ जाने से छोड़ दिये गये। आप एकान्त में कलकत्ते में अपने मकान में रहकर ईश्वर की प्रार्थना करने लगे।

अचानक गायब—एक दिन अचानक ही वह अपनी कोठरी से गायब होगये। कहा जाता है कि वे पेशावर, काबुल होते हुए जर्मनी पहुँचे। हिटकर से मिले और फिर इटली में मसोलिनी से मिलकर जापान चले गये। वहाँ सुदूर पूरब में दो करोड़ लोगों की हिन्द आजाद सेना तैयार की। इन्होंने आजाद हिन्द की अस्थाई सरकार भी बनाई और अँग्रेज और अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी।

इस आजाद हिन्द सेना ने जापान की सहायता से हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया और आसाम लेलिया। अन्त में जब जर्मनी हार गया तो अमरीका ने अणुबम की सहायता से जापान पर आक्रमण किया। जापान ने १५ अगस्त सन् १६४५ को आत्म-समर्पण कर दिया। जापान के साथ आजाद हिन्द सेना को भी नीचा देखना पड़ा १८ अगस्त सन् १६४५ को जापान की घोषणा से रेडियो द्वारा ज्ञात हुआ कि नेताजी बैंकाक से टोकियो जाते समय वायुयान की दुर्घना से मृत्यु के ग्रास बन गये। समस्त देश आज भी उनके प्रति हृदय में अटूट प्रेम और श्रद्धा रखता है।

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता :—

हिन्दुस्तानी बुक डिपो, मथुरा।

श्री आगरा अखबार [illegible] प्रेस, आगरा।